

कैसे आए प्रशिक्षण में मानकता?

मीडिया शिक्षाविद् डॉ. देवेश किशोर से बातचीत



जवाहरलाल कोल

हजारों वर्ष पहले संजय का घर बैठे ही महाभारत युद्ध का आँखों देखा हाल बताना आज हमें कोई आलौकिक चमत्कार नहीं लगता तो इसलिए कि आज यह एक संभावना ही नहीं दिखती अपितु इस तरह के चमत्कार हमारे जीवन का अंग बन चुके हैं। हम संचार विज्ञान के विस्तार और सूचना माध्यमों के विभिन्न आयामों के अभ्यस्त हो चुके हैं कि हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि कुछ ही दशक पहले यह सब अधिक से अधिक हमारे लिए केवल भविष्य की वैज्ञानिक संभावनाएँ मात्र थीं। इस बात से सुखद आश्चर्य होता है कि इतना सब कुछ हमारे ही जीवन काल में संभव हुआ है और इस क्रांति के पहले पहले सिपाही अभी इस के विकास में सक्रिय हैं। राजधानी दिल्ली की बगल में गौतम बुद्ध नगर (नोएडा) के एक सूचना प्रबंधन महाविद्यालय में पत्रकारिता विभाग के डीन डॉक्टर देवेश किशोर से मिलकर मुझे भी ऐसा ही आश्चर्य हुआ। 1971 में पत्रकारिता के अधिकतर छात्र पैदा ही नहीं हुए होंगे जब एक भारतीय विश्वविद्यालय में डॉ. देवेश की ही अध्यक्षता में पहली बार न केवल विकास पत्रकारिता का प्रशिक्षण आरम्भ हुआ अपितु उस के निमित्त विश्वविद्यालय का अपना रेडियो स्टेशन भी स्थापित हुआ था। तब दूरदर्शन का बोलबाला नहीं था। रेडियो ही एक मात्र इलेक्ट्रॉनिक माध्यम था जिसका उपयोग सूचना प्रसारण और जन शिक्षण के लिए लिया जा सकता था। विकास पत्रकारिता के प्रशिक्षण का प्रबंध भी विश्वविद्यालय स्तर पर केवल चंडीगढ़ और उस्मानिया विश्वविद्यालयों तक ही सीमित था। लेकिन इस प्रशिक्षण का दायरा केवल समाचार पत्र और पत्रिकाएँ हीं थीं। इस दौर में कुछ घटनाएँ एक साथ हुई जिन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र



डॉ. देवेश किशोर

में क्रांति को जन्म दिया। कृषि के विकास पर जोर दिया जाने लगा, विकास को गति देने के लिए प्रौद्योगिकी के नवीकरण और विज्ञान के उपयोग की योजनाएँ बनीं और देश में पहली बार टेलीविजन का आगमन हुआ। यह आगमन दूरसंचार उपग्रहों के माध्यमों के कारण हुआ। हालाँकि कार्यक्रम श्वेत-श्याम और सीमित अवधि के लिए ही हुआ करते थे, लेकिन सरकारों, शिक्षाविदों और आम जनता में टेलिविजन क्रांति का अंग बनने की आकांक्षा जग गई थी।

लेकिन जैसा हर प्रौद्योगिक दौर में होता रहा है किसी वैज्ञानिक आविष्कार और उस की व्यापक स्वीकृति के बीच एक संशय और हिचकिचाहट का व्यवधान रहता है। लोग किसी टेक्नोलॉजी को तुरंत स्वीकृति नहीं देते। यह अनिश्चय अक्सर प्रशासन के स्तर पर अधिक गहरा होता है। रंगीन टेलीविजन के चारों ओर छा जाने और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का कारवाँ कई पड़ावों पर ठहरते ठहरते आगे बढ़ा है जिसमें सरकारी पहल कम टेक्नोलॉजी और बाजारवाद की मजबूरियाँ अधिक प्रभावी कारक रही हैं। जनसंचार संस्थान (आइएमसी) में विकास पत्रकारिता के लिए टेलीविजन को प्रभावी माध्यम माना गया तो उसके लिए आधुनिक स्टुडियो स्थापित करने की भी पहल की गई। और कई विश्वविद्यालयों में भी व्यावसायिक उपकरणों और स्टुडियो बनाने का क्रम चल पड़ा। लेकिन टेलीविजन को सचमुच बहुत बड़े पैमाने पर शिक्षण का साधन बनाया जा सकता है, यह दरअसल इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने ही साबित कर दिखाया। 'इग्नू' ने देश के कोने-कोने तक पहले रेडियो प्रसारण से और बाद में टेलीविजन का उपयोग करके करोड़ों छात्रों को शिक्षित



करने का महत्वपूर्ण काम किया। टेलीविजन की ही तरह 'इग्नू' की पद छाप भारत से बाहर बहुत से पड़ोसी देशों और दूर के अफ्रीकी देशों में दिखाई दे रही है। दिलचस्प बात है कि देवेश किशोर इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता और पत्रकारिता में विकास का आयाम जोड़ने की यात्रा में केवल प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं रहे हैं उस अभियान की पहली पंक्ति में भी खड़े थे।

इस ऐतिहासिक अभियान में भी हर अभियान की तरह अवरोध तो आने ही थे। एक ऐसे समाज में यह स्वाभाविक था जो अभी-अभी सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति में पहला कदम उठा रहा था। प्रोफेसर यशपाल समेत कुछ वैज्ञानिक उपग्रहों के व्यापक उपयोग की वकालत ही कर रहे थे। सरकार और उसके अधिकारी इस नए लोक में कदम रखने से घबरा रहे थे।

“तब टीवी सुदूर पश्चिम की एक चमत्कारिक उपलब्धि ही थी। उपग्रह टीवी का हमने प्रयोग करना आरम्भ किया था। हमारे लिए इलेक्ट्रॉनिक माध्यम रेडियो ही था और सौभाग्य से रेडियो के मामले में हम काफी आगे निकल चुके थे। पहली मुश्किल तो यही आ रही थी कि प्रशासकों को समझाना आसान नहीं था कि रेडियो का उपयोग हम कृषि, उद्योग और दूसरे आर्थिक मामलों के विस्तार के लिए भी कर सकते हैं। इसलिए मैं मानता हूँ कि पंतनगर विश्वविद्यालय

का अपना रेडियो स्टेशन स्थापित करना एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। देश के प्रमुख पत्रकारिता संस्थान आइएमसी के बाद 'इग्नू' का इस क्षेत्र में आना तो इसकी स्वाभाविक परिणति थी। लेकिन मेरे लिए तो कठिनाई इस से भी पहले आरम्भ हो गई थी। मैं कामर्शियल पत्रकारिता में प्रशिक्षण प्राप्त करके 1961 में ही निकला था और 1964 में कानपुर में कृषि पत्रकारिता पढ़ने लगा था लेकिन 1971 तक अधिकारियों को यह समझाना बहुत कठिन हो रहा था कि पत्रकारिता, विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का आर्थिक मूद्दों के विकास में कोई योगदान हो सकता है। सरकार प्रौद्योगिकी और पैसे दोनों के अभाव की दलील देती थी। इसलिए पंतनगर का प्रयोग इस मामले में भी महत्वपूर्ण माना जाएगा। तब के सूचना मंत्री इंद्र कुमार गुजराल की पहल ने रास्ता साफ कर दिया। कोर्नल विश्वविद्यालय न्यूयार्क के एक प्रतिष्ठित विशेषज्ञ को भारत सरकार ने पहली बार इस मामले में सलाहकार बनाकर नियुक्त किया।”

“दूसरी बाधा तब पैदा हुई जब रंगीन टीवी ने हमारे देश में दस्तक दी। रंगीन टीवी देश में आ तो गया था लेकिन इस के उपयोग और इसकी संभावनाओं की पूरी समझ सरकारी अधिकारियों को नहीं थी। एशियाई खेलों में इस का जादू तो शहरी जनता को चमत्कृत कर गया था लेकिन मनोरंजन और सूचना के इस माध्यम को गैर सरकारी हाथों में देने का फैसला करना किसी भी सरकार के लिए आसान नहीं था। रेडियो भी अभी सरकारी एकाधिकार में चल रहा था तो टीवी का निजीकरण कैसे किया जाए?”

“सूचना मंत्री सुषमा स्वराज थीं। टीवी चैनलों के निजीकरण की माँग जोर पकड़ रही थी। हालाँकि उनकी सरकार निजीकरण के विरुद्ध नहीं थी लेकिन इस सूचना माध्यम पर सरकारी नियंत्रण छोड़ने के विरुद्ध अधिकारियों की दलीलें कई तरह की थीं। उन में देश की सुरक्षा और गोपनीय जानकारी के लिए खतरे की आशंकाएं सबसे बड़ी थीं। सुषमा जी तय नहीं कर पा रहीं थीं कि क्या किया जाए। निजी प्रसारण संस्थाओं ने तब एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमें सरकार को फैसला करना ही पड़ा। उन्होंने सरकार से कहा कि अगर

देश के विभिन्न भागों में चलने वाले पत्रकारिता विद्यालयों में बहुत से ऐसे हैं जिन में न तो योग्य शिक्षक हैं और न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अनुरूप उपकरण या स्टूडियो आदि। ऐसे विद्यालयों से निकले छात्रों को पत्रकारिता के बाजार में किनारे धकेला जाता है। उन्हें भी नौकरी शायद मिल ही जाती होगी लेकिन वह नहीं जिस के सपने उन्होंने पाले होते हैं।

आप हमें चैनल चलाने की अनुमति नहीं देंगे तो हमारे लिए पड़ोसी देशों से चैनल चलाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। सिंगापुर और ऐसे कई केंद्रों से टीवी तरंगें प्रवाहित होने लगी क्योंकि इनके उपग्रहों की पदछाप (फुट प्रिंट) लगभग पूरे भारत तक फैली थी इसलिए निजीकरण पर कोई प्रतिबंध ही बेमामने हो गया था। सरकार को चैनलों के निजीकरण को स्वीकार करना ही पड़ा।”

स्पष्ट है कि समाचार, सूचना और मनोरंजन के क्षेत्र में इस विराट बदलाव का प्रभाव पत्रकारिता के प्रशिक्षण पर भी पड़ना था। पत्रकारिता जब बाजारोन्मुख हो गई तो उस की शिक्षा केवल सैद्धांतिक कैसे रह सकती थी। पत्रकारिता तेजी से एक उद्योग बन गई थी तो उस में काम करने वालों को बाजार की समझ पैदा करनी ही थी। क्या ऐसा बदलाव प्रशिक्षण के क्षेत्र में आया ?

“रेडियो और टीवी चौबीस घंटे पाठक और श्रोता को सम्बोधित कर सकते हैं - समाचार पत्रों की तरह वे चौबीस घंटे में एक बार पाठक के सामने नहीं आते। इसलिए सूचना देने की प्रतियोगिता में समाचार पत्र इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सामने नहीं टिक सकते थे। उनके लिए भी बदलना आवश्यक हो गया। दैनिक पत्र भी अब ‘न्यूज पेपर’ न रहकर ‘व्यूज पेपर’ हो गए। यानी समाचार केवल सूचना नहीं रह गया सम्पादक या समाचार लेखक की टिप्पणी, उसका दृष्टिकोण बन गए - इसे वे विश्लेषण का नाम देने लगे। इस प्रतियोगिता में पत्रकारिता के छात्र के लिए तथ्य ही जुटाने की आवश्यकता नहीं थी, उसे इस तरह पेश करने की आवश्यकता थी कि वह पाठक को बाँधे रखे यानी पत्रकारिता प्रशिक्षण में सूचना को बेचने की कला भी शामिल हो गई।”

स्वाभाविक है कि इस दौर में शुद्ध सूचना या खालिस तथ्य का उतना महत्व नहीं रहा जितना सूचना की पेकेजिंग का उसे बिक्री लायक बनाने का। इसलिए आज पत्रकारिता की व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा नहीं दी जाती तो वह बाजार में नहीं टिक पाएगी। प्रिंट मीडिया का अपना क्षेत्र है लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जिस गति से आगे बढ़ रहा है और लगातार बदल रहा है उस के कारण छात्रों में उस के प्रति अधिक आकर्षण होना अस्वाभाविक

आज पत्रकारिता की व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा नहीं दी जाती तो वह बाजार में नहीं टिक पाएगी।



नहीं है। लेकिन क्या सचमुच हमारे सैकड़ों पत्रकारिता विद्यालयों से ऐसे स्नातक निकलते हैं जो आज की पत्रकारिता के लिए पूरी तरह तैयार हों ?

“मैं मानता हूँ कि देश के विभिन्न भागों में चलने वाले पत्रकारिता विद्यालयों में बहुत से ऐसे हैं जिन में न तो योग्य शिक्षक हैं और न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अनुरूप उपकरण या स्टूडियो आदि। ऐसे विद्यालयों से निकले छात्रों को पत्रकारिता के बाजार में किनारे धकेला जाता है। उन्हें भी नौकरी शायद मिल ही जाती होगी लेकिन वह नहीं जिस के सपने उन्होंने पाले होते हैं।”

अगर पत्रकारिता अब एक महत्वपूर्ण उद्योग बन गई है तो उस की मानकता पर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता ? कौन देगा ध्यान ? हमारे यहाँ तो व्यावसायिक निगरानी के लिए कोई संस्था ही नहीं। प्रेस परिषद का कार्यक्षेत्र कुछ ऐसा है कि उसकी बात कोई मानता ही नहीं। सामान्य शिक्षा के बारे में कई तरह की संस्थाएँ हैं जिनके अच्छे या बुरे नियम कायदों को शिक्षा संस्थाओं को मानना ही पड़ता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग है। मेडिकल शिक्षा के लिए मेडिकल कौंसिल है। आदर्श भले ही न हों लेकिन पठन सामग्री सामान्य सुविधाओं और तकनीकी उपकरणों में कुछ तो मानकता आती ही है। मानकता उद्योग की आवश्यकता होती है। उद्योग पर ग्राहक का दबाव होता है कि वह सही वस्तु ही दे। लेकिन अभी पत्रकारिता उद्योग पर पाठक और दर्शक का दबाव बना ही नहीं है जबकि अब पत्रकारिता केवल समाचार पत्र और टेलीविजन से भी आगे इंटरनेट और मोबाइल तक जा चुकी है। लगता है पढ़ने, सुनने और देखने वाला वर्ग इस उद्योग में अब भी सब से निचले पाए पर खड़ा है।

श्री कौल वरिष्ठ पत्रकार हैं।
kauljawaharlal@gmail.com